REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 11 | ISSUE - 12 | SEPTEMBER - 2022

भक्ति आंदोलन के उदय की परिस्थितियों का अध्ययन

स्वाति प्रीती
शोधार्थी इतिहास, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

सारांश –

मध्यकाल में कई धार्मिक विचारकों तथा सुधारकों ने भारत के सामाजिक–धार्मिक जीवन में सुधार लाने के उद्देश्य से भक्ति को साधन बनाकर एक आंदोलन प्रारंभ किया जो भक्ति आंदोलन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यद्यपि भारतीय जनजीवन के लिये यह आंदोलन नया नहीं था तथापि इस्लाम की उपस्थिति से इसे वेग प्राप्त हुआ तथा यह जनान्दोलन में परिणत हो गया। भारतीय जनजीवन में इसने एक नवीन शक्ति तथा गतिशीलता का संचार किया। रामानुज, निम्बकाचार्य, माधवाचार्य ने दक्षिणी भारत तथा बल्लभाचार्य, कबीर, नानक, चैतन्य, नामदेव, मीरा आदि ने उत्तर भारत में भक्ति आंदोलन का संचालन किया। इन संतों के सतत् प्रयासों के परिणामस्वरूप देखते ही देखते सल्तनतकाल में सम्पूर्ण भारत में भक्ति आंदोलन फैल गया और इस आंदोलन के अनुयायियों की संख्या में भारी वृद्धि हुई एवं नवीन जीवन और विचारधारा का क्रमिक संचार किया।

मुख्य शब्द – भक्ति आंदोलन, सामाजिक, धार्मिक एवं नवीन जीवन ।

प्रस्तावना –

मध्यकालीन समाज का यह आंदोलन कोई नया नहीं था। सर्वप्रथम इसका उदय द्रविड़ देश में हुआ तथा वहाँ से उसका प्रचार उत्तर में किया गया। भागवत पुराण में कहा गया है कि भक्ति द्रविड़ देश में जन्मी, कर्नाटक में विकसित हुई तथा कुछ काल तक महाराष्ट्र मे रहने के बाद गुजरात में पहुँच कर जीर्ण हो गयी।[1]

भक्ति तथा धार्मिक आंदोलनों का सूत्रपात दक्षिण में आठवीं शती में महान् दार्शनिक शंकराचार्य के उदय के साथ हुआ था जिन्होंने विशुद्ध अद्वैतवाद का प्रचार किया। किंतु उन्होंने ज्ञान की महत्ता का प्रतिपादन किया था। उनका मत सामान्य लोगों को ग्राह्य नहीं हुआ। हिन्दू धर्म को व्यापक आधार प्रदान करने के उद्देश्य से मध्यकाल में अनेक धार्मिक सुधारकों का आविर्भाव हुआ जिन्होंने मोक्ष प्राप्ति के लिये भक्ति पर बल दिया। भक्ति आंदोलन के प्राचीनतम प्रचारक प्रसिद्ध वैष्णव आचार्य रामानुज (1017–1137ई.) थे जिन्होंने सगुण ईश्वर की उपासना पर बल दिया। रामानुज के अतिरिक्त दक्षिण के अन्य प्रमुख धर्म सुधारक निम्बार्क, मध्व तथा बल्लभाचार्य थे। इनमें बल्लभाचार्य कृष्ण भक्ति सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे। उनका मत 'शुद्धाद्वैत' कहा जाता है।

उत्तर भारत में भक्ति आंदोलन के प्रथम प्रवर्तक रामानंद थे जिनका जन्म 1299 ई. के लगभग प्रयाग के कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार मे हुआ था। भक्ति को मोक्ष का एकमात्र साधन स्वीकार करते हुए उन्होंने रामसीता की उपासना का आदर्श समाज के सामने रखा। जाति–पाँति तथा बाह्याडम्बरों का विरोध करते हुये उन्होंने सभी जातियों के लोगों को अपना उपदेश दिया। उन्होंने अपने मत का प्रचार संस्कृत में न करके क्षेत्रीय भाषाओं

में किया। उनकी दृष्टि बड़ी उद्धार थी। उन्होंने ब्राह्मण से लेकर शूद्र तक सभी को अपना शिष्य बनाया। रामानन्द के बारह प्रमुख शिष्यों में एक जुलाहा (कबीर), एक चमार (रैदास) तथा एक नाई (सेना) के नाम उल्लेखनीय है। रामानन्द उत्तर तथा दक्षिण के भक्ति आंदोलन के बीच की कड़ी थे। उन्होंने कबीर, नानक तथा चैतन्य के समाज एवं धर्म सुधार आंदोलनों की पृष्ठभूमि तैयार की थी।

मध्यकाल के सम्प्रदाय जो इस्लाम में सर्वाधिक प्रभावित हुए वे कबीर तथा गुरू नानक के थे। कबीर (1440–1510 ई.) का नाम हिन्दू तथा मुलसमानों के समान रूप से लोकप्रिय है। उनका प्रारम्भिक जीवन अन्धकारपूर्ण है। परम्परा के अनुसार उनका जन्म किसी विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से वाराणसी के समीप हुआ तथा पालन पोषण एक जुलाहा दम्पत्ति नीरू तथा नीमा ने किया। कबीर अत्यन्त फक्कड़ स्वभाव के थे। उन्होंने हिन्दू तथा मुसलमान दोनों के बीच का भेदभाव समाप्त करने के लिये दोनों ही धर्मों की कुरीतियों एवं बाह्याडम्बरों का जमकर विरोध किया। निराकार ईश्वर में विश्वास करते हुए उन्होंने वेद और कुरान की प्रामाणिकता को चुनौती दी। ब्राह्मणों तथा मुसलमानों की जन्मगत श्रेष्ठता उन्हें मान्य नहीं थी। उन्होंने कर्म की प्रधानता स्वीकार करते हुए धर्म की मौलिक एकता पर बल दिया। मूर्ति पूजा, मन्दिर, मस्जिद, तीर्थब्रत आदि की उन्होंने कड़ी निंदा करते हुए उन्हे त्याज्य बताया।[2] उनका कहना था कि राम–रहीम, कृष्ण–करीम, मक्का तथा काशी एक ही परमेश्वर की विभिन्न अभिव्यक्तियाँ हैं। कबीर अपने समय के महानतम समाज सुधारक भी थे। उन्होंने मानव मात्र की समानता पर बल दिया तथा जाति प्रथा, ऊँच–नीच आदि का घोर विरोध किया। यह कहते हुए कि 'सांई के सब जीव है कीरी कुंजर दोय' उन्होने मानव मात्र की समानता का उद्घोष किया तथा ईश्वर भक्ति के लिये सभी के समान अधिकार की मांग की। इसी प्रकार 'हरि का भजे सो हरि का होई, जाति–पाँति पूछै नहि कोई' का उद्घोष कर उन्होंने परम्परागत जाति प्रथा को गम्भीर चुनौती दी। आजीवन गृहस्थ जीवन व्यतीत कर कबीर ने श्रम की महत्ता का प्रतिपादन किया। धनसंचय तथा वैभव के वे विरोधी थे। उन्होंने यह उपदेश दिया कि मनुष्य को परिश्रम से उतना ही धन अर्जित करना चाहिये जितना उसके उपयोग के लिये आवश्यक हो। उन्होंने ईश्वर से यह मांग की –

सांई इतना दीजिये जामें कुटुम्ब समाय।
मैं भी भूखा न रहूँ, साधु न भूखा जाय।[3]

इस प्रकार कबीर भक्ति आंदोलन के सर्वप्रमुख नेता थे। उन्होंने समाज के सभी वर्गों का सच्चा मार्गदर्शन किया। उनकी वाणी ने समाज के निम्न वर्गों को सम्मान दिया तथा उपेक्षित एवं अनादृत जनसमूह में आशा और विश्वास का सृजन किया। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में युगावतार की शक्ति और विश्वास लेकर वे पैदा हुए थे और युग प्रवर्तन की दृढ़ता उनमें वर्तमान थी। इसी लिये वे युग प्रवर्तन कर सके।

भारतीयों का आदिकाल से प्रमुख उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति का रहा है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए विद्वानों और मनीषियों द्वारा तीन मार्ग पहला कर्म, दूसरा ज्ञान और तीसरा भक्ति मार्ग बताए गए हैं इनमें से मोक्ष प्राप्ति के लिए भक्ति मार्ग पर विशेष बल दिया गया, परिणामस्वरूप मध्यकाल में भक्ति आंदोलन हुआ, भक्ति आंदोलन मध्यकालीन इतिहास की अविस्मरणीय घटना है, भक्ति आंदोलन का नेतृत्व उत्तरी भारत में रामानंद तथा दक्षिणी भारत में रामानुज ने किया, इसके अतिरिक्त समय–समय पर अनेक संतों ने इस आंदोलन का कुशल नेतृत्व कर उसे गति प्रदान की, इस आंदोलन में भक्ति पर विशेष बल दिया गया, यह आंदोलन अनेकानेक विशेषताओं से युक्त था। इस आंदोलन की विशेषताओं ने तत्कालीन समाज को अत्यधिक प्रभावित किया है।

विश्लेषण –

भक्ति आंदोलन की सर्वप्रमुख विशेषता उसके स्वरूप का अत्यन्त सरल और आडम्बरहीन होना था। इस आंदोलन में भगवान के प्रति सच्ची भक्ति और प्रेम पर विशेष बल दिया गया था। परम्परागत अन्धविश्वासों और कर्मकाण्डों को इसमें कोई स्थान नहीं दिया गया था। इस विचारधारा द्वारा यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया था कि भगवान का वास हृदय में होता है, मन्दिर अथवा तीर्थस्थलों में नहीं।

इस आंदोलन की दूसरी विशेषता यह थी कि इसमें मूर्ति पूजा पर विशेष जोर नहीं दिया गया था।

अधिकांश भक्त संतो ने मूर्ति पूजा में कोई विशेष रूचि नहीं दिखाई, बल्कि कुछ संतों यथा कबीर एवं बिसोबा खेचर ने तो मूर्ति पूजा का विरोध किया। उन्होंने कहा ''पत्थर का देवता तो बोलता तक नहीं फिर यह भला हमारे इस जीवन के दुःखों को कैसे दूर कर सकता है? यदि यह हमारी इच्छा पूर्ण करने की शक्ति रखता तो स्वयं गिर जाने पर टूट क्यों जाता है? एक ईश्वर की उपासना इस आंदोलन की अन्य विशेषता थी, इस विचारधारा के अंतर्गत विभिन्न देवी देवताओं की पूजा के स्थान पर एक ईश्वर की पूजा पर बल दिया गया था। भक्ति आंदोलन में जाति–पाँति का खुलकर विरोध किया गया। इस सम्बन्ध में स्वामी रामानंद का तो स्पष्ट कहना था कि, ''जाति–पाँति पूछे नहीं कोई, हरि को भजै सो हरि का होई।'' [4]

हिन्दु–मुस्लिम एकता पर बल इस आंदोलन की एक अन्य विशेषता थी, भक्ति आंदोलन के संत यथा कबीर ने अपनी ओजपूर्ण शैली में हिन्दू–मुस्लिम एकता पर बल दिया, उन्होंने हिन्दू और मुसलमान दोनों को ही अपना शिष्य बनाया, उन्होंने हिन्दू और मुसलमान में बढ़ती कट्टरता को समाप्त करने के लिए दोनों जाति की आलोचना करते हुए कहा, अरे इन दोउन राह न पाई, हिन्दुन की हिन्दु आई, देखी, तुरकन की तुरकाई'' कबीर के अतिरिक्त गुरूनानक, रैदास, चैतन्य एवं नामदेव आदि ने भी हिन्दु मुस्लिम एकता पर बल दिया।

इस आंदोलन के प्रचार–प्रसार में जनभाषा पर विशेष जोर दिया गया, नामदेव, कबीर ने हिन्दी, मीरा ने राजस्थानी, नरसी मेहता ने गुजराती तथा नानक ने पंजाबी में इस आंदोलन का प्रचार प्रसार किया। भक्ति की विचारधारा में अनेक संतों द्वारा समन्वयवाद पर विशेष जोर दिया गया। एक विद्वान के शब्दों में भक्तिकाल की सबसे बड़ी विशेषता उसके मूल में स्थित समन्वय की भावना है। यह समन्वय हमें जीवन के प्रायः सभी क्षेत्रों में क्या धार्मिक? क्या सामाजिक? क्या दार्शनिक? उपलब्ध होता है। धार्मिक क्षेत्र में ज्ञान, भक्ति तथा कर्म का समन्वय बड़ा प्रसिद्ध है। भक्तिकाल में जो सामाजिक व्यवस्था फैली हुई थी, उसके भिन्न–भिन्न सूत्रों का समन्वय करना भक्तिकाल के सामाजिक समन्वय का सबसे बड़ा उदाहरण है।

भक्ति आंदोलन इतनी विशेषताओं से युक्त आंदोलन था कि इसने शीघ्र ही लोगों पर अपना प्रभाव छोड़ना शुरू कर दिया। देखते ही देखते अपार जन समुदाय इस विचारधारा से जुड़ गया। परिणामस्वरूप तत्कालीन समाज पर इसका स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर हुआ। इस आंदोलन के परिणामस्वरूप एक नवीन विचारधारा का प्रचार–प्रसार हुआ। लोगों का एक कर्मकाण्डों और आडम्बरों में विश्वास शनैः शनैः कम होने लगा। मूर्ति पूजा में लोगों का विश्वास कम हुआ। अब लोग विभिन्न देवी देवताओं की पूजा के स्थान पर एक मूर्ति पूजा पर जोर देने लगे, जाति–पाँति का भेदभाव उत्तरोत्तर कम होने लगा। जाति–पाँति के बंधन पूर्व की अपेक्षा ढीले पड़ गए। इस आंदोलन के प्रभाव के सम्बन्ध में डॉ. युसुफ हुसैन ने लिखा है कि, मध्य युग में कबीर जैसे सुधारकों का समूह उठ खड़ा हुआ जो एक निजी ईश्वर में अपने उत्कृष्ट विश्वास तथा एक नैतिक विधान का, जो संसार पर शासन करता था, प्रचार करता था। इस आंदोलन के परिणामस्वरूप हिन्दू मुस्लिम संघर्ष की स्थिति जो इस्लाम के प्रवेश के कारण उत्पन्न हुई थी। उसे दूर करने में सफलता प्राप्त हुई।

भक्ति आंदोलन न केवल सल्तनतकाल, बल्कि मध्यकाल की अविस्मरणीय घटना है। भक्ति आंदोलन वास्तव में एक नवीन विचारधारा थी, जिसके अंतर्गत मोक्ष प्राप्ति के लिए भक्ति पर विशेष बल दिया गया था। यद्यपि इस विचारधारा का उदय गुप्तकाल में हुआ था किंतु इसका वास्तविक विकास सल्तनतकाल में हुआ, चूँकि इस काल में एक विशाल जनसमुदाय इस विचारधारा से जुड़कर व्यापक स्तर पर इसके प्रचार–प्रसार में संलग्न हो गया था। अतः शीघ्र ही इसने एक आंदोलन का रूप धारण कर लिया। इस आंदोलन का अनेक संतों यथा–रामानुज, निम्बकाचार्य, माधवाचार्य, रामानन्द, बल्लभाचार्य कबीर आदि ने नेतृत्व किया। इन संतों के सतत् प्रयासों से इस आंदोलन का क्रमिक विकास हुआ जिसका वर्णन विभिन्न संतों के योगदान में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है।

भक्ति आंदोलन का नेतृत्व करने वाले संतों में रामानुज का नाम सर्वप्रमुख है। प्रारम्भ में रामानुज ने शंकराचार्य के सिद्धान्तों का समर्थन किया, किंतु कालान्तर में उन्होंने शंकराचार्य के अद्वैतवाद का खण्डन किया और विशिष्टा द्वैतवाद का प्रचार किया। वे दक्षिण भारत में वैष्णव धर्म के प्रचारक थे। उन्होंने यह प्रचारित किया कि परमात्मा अद्वितीय रूप में महान हैं व जन्मदाता पालक एवं संहारक है। उन्होंने दक्षिण भारत में भक्ति आंदोलन का नेतृत्व किया। निम्बकाचार्य, माधवाचार्य, रामानंद एवं बल्लभाचार्य आदि ने भी अपने सतत प्रयासों से भक्ति आंदोलन को गति प्रदान की।[5]

कबीर की गणना भक्ति आंदोलन के सर्वप्रमुख संतों में की जाती है। वे मात्र उपदेशक ही नहीं थे, बल्कि एक समाज सुधारक भी थे। उन्होने तत्कालीन समाज में व्याप्त बुराइयों पर कुठाराघात कर उन्हें जड़ से नष्ट करने का प्रयास किया। वे निर्गुण ईश्वर के उपासक थे। उन्होंने हिन्दू धर्म को आडम्बरों से मुक्ति दिलाकर अध्यात्मवाद की ओर प्रेरित तथा हिन्दू और मुसलमानों में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया। उन्होंने कुरान और वेद दोनों को मान्यता प्रदान की, किंतु ब्राह्मणों एवं मुल्लाओं की कट्टर श्रेष्ठता का विरोध किया। मूर्ति पूजा, कब्र पूजा, नमाज तथा जाति–पाँति का उन्होंने विरोध किया तथा एकेश्वरवाद के प्रेम और भक्ति के मार्ग पर विशेष जोर दिया।

नानक की विचारधारा भी कबीर की विचारधारा से मिलती–जुलती थी, उन्होंने यह प्रचारित किया कि न कोई हिन्दू है और न कोई मुसलमान सभी व्यक्ति एक परम शक्तिशाली परमात्मा की संतान है जो अनंत सर्वशक्तिमान एवं स्वयंभू है। अतः सभी को बिना किसी जाति–पाँति के भेदभाव के प्रेम सहित रहना चाहिए। उन्होंने कर्मकाण्ड का घोर विरोध किया तथा कबीर के समान गुरू के महत्व पर बल दिया। उन्होंने कर्म और पुनर्जन्म में विश्वास का प्रचार–प्रसार किया। नानक के सम्बन्ध में डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव ने लिखा है ''नानक का लक्ष्य एकेश्वरवाद की मान्यता के आधार पर हिन्दू धर्म में सुधार करना और हिन्दू एवं मुसलमानों के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करना था। अपने उद्देश्य से उन्हें बहुत कुछ सीमा तक सफलता मिली।

चैतन्य भक्ति आंदोलन के अन्य प्रमुख संत थे, उन्होंने घूम घूमकर कृष्ण की भक्ति का प्रचार प्रसार किया। वे कृष्ण को सर्वोच्च ईश्वर मानते थे। उनका मत था कि कृष्ण भक्ति से व्यक्ति सांसारिक बंधनों से मुक्त हो सकता है। कृष्ण भक्ति के साथ ही साथ उन्होंने व्यक्ति प्रेम, नृत्य संगीत एवं गुरू सेवा पर विशेष बल दिया। उन्होंने प्रचारित किया कि नृत्य और संगीत द्वारा व्यक्ति ईश्वर की भक्ति में लीन हो सकता है। उन्होंने जातीय भेदभाव, कर्मकाण्ड तथा अन्धविश्वासों का विरोध किया। भक्ति आंदोलन में चैतन्य की भूमिका और उनके उपदेशों का लोगों पर पड़ने वाले प्रभाव के विषय में डॉ. ए.एल. श्रीवास्तव ने लिखा है कि, चैतन्य का प्रभाव इतना गहरा और स्थायी था कि उनके अनुयायी उन्हें कृष्ण और विष्णु का अवतार समझते थे। उनके उपदेश सहज ही जनता के हृदय में उतर जाते थे।

नामदेव ने महाराष्ट्र में भक्ति आंदोलन का संचालन किया। उन्होंने लोगों को प्रेम तथा भक्ति का उपदेश दिया तथा उन्हें मानसिक रूप से रीति–रिवाज एवं जाति प्रथा की जटिलता से मुक्त किया। उन्होंने निर्गण ईश्वर की उपासना का प्रचार प्रसार किया। उन्होंने गुरू की महत्ता का भी गुणगान किया।

मीराबाई ने अपनी शक्ति से समस्त जनसमुदाय को अंचभित कर दिया। उन्होंने कृष्ण की भक्ति और उसके प्रभाव का सर्वत्र प्रचार किया। परिणामस्वरूप भारी संख्या में उनके अनुयायी हुए। उन्होंने पति के रूप में ईश्वर की भक्ति का प्रचार–प्रसार किया।

निष्कर्ष –

निष्कर्षतः मध्यकाल के सुधार आन्दोलन या भक्ति आंदोलन ने उत्तर भारत के सामाजिक, धार्मिक जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन उत्पन्न कर दिया था। लोगों में एक नई शक्ति एवं गतिशीलता का अनुभव होने लगा था। इस आंदोलन ने देश के सांस्कृतिक एकता के सूत्र में संगठित करने का कार्य किया। समाज के सभी वर्गों में यह भावना घर कर गयी कि भक्ति के लिए जात–पाँत का कोई बंधन नहीं होता। सभी ने कर्म की महत्ता को स्वीकार किया। मध्यकालीन सम्पूर्ण भारत अंधविश्वास, रूढ़ियों एवं पाखण्डों के आडम्बर से आबद्ध था। उक्त काल के धर्मशास्त्री, मौलवी आदि भोली–भाली जनता को धार्मिक उन्मादों में उलझाकर रख दिये थे, जिनमें मध्यकालीन संत समाजों का जनमानस के मार्गदर्शन में सराहनीय योगदान दिया। इन संत समाज के सुधार आंदोलन में संत कबीर की भूमिका अहम् भूमिका रही है, जिनके दर्शन व भक्ति मार्ग के बताये मार्गों से आधुनिककालीन भारतवासियों को भी मार्ग प्रशस्त हो रहे हैं।

संदर्भ –

1. के.सी. श्रीवास्तव – प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, संस्करण 2047, पृष्ठ 816
2. के.सी. श्रीवास्तव – प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, संस्करण 2047, पृष्ठ 817
3. के.सी. श्रीवास्तव – प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, संस्करण 2047, पृष्ठ 818

4. डॉ. ए.के. चतुर्वेदी –इतिहास, उपकार प्रकाशन, आगरा, संस्करण 2013, पृष्ठ 468
5. डॉ. ए.के. चतुर्वेदी –इतिहास, उपकार प्रकाशन, आगरा, संस्करण 2013, पृष्ठ 469